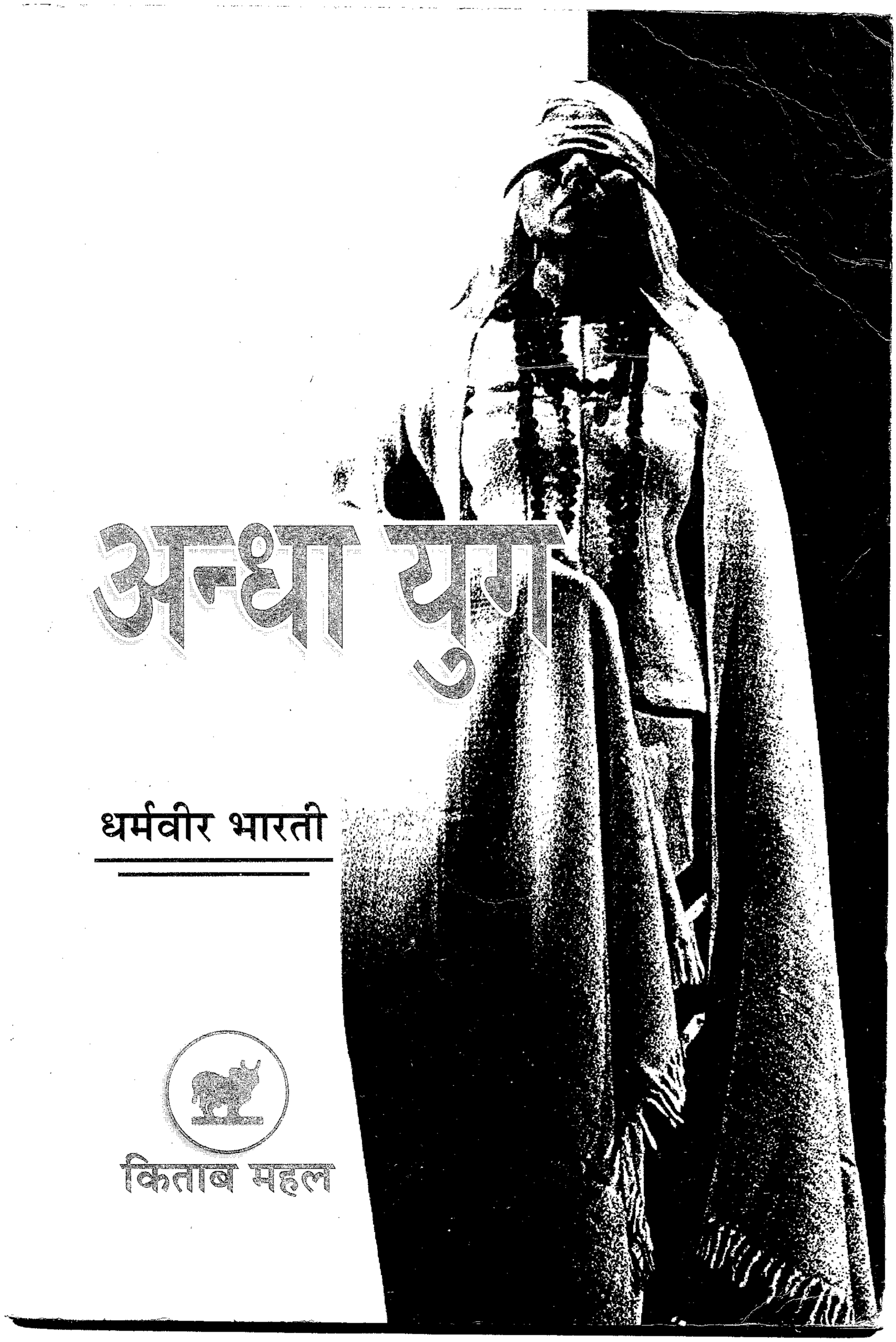

अन्धा युग

धर्मवीर भारती

किताब महल

अन्धा युग

धर्मवीर भारती

किताब महल

प्रस्तुत संस्करण : 2001

visit : "w. w. w. India book fair.com/Kitab Mahal"

ISBN : 81-225-0102-8

मुख्य वितरक

1. किताब महल एजेन्सीज,
22, सरोजनी नायडू मार्ग,
इलाहाबाद—211 001
दूरभाष : 621466

2. किताब महल डिस्ट्रीब्यूटर्स,
28, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली—110 002
दूरभाष : 3273230, 3289935
3289285

3. **किताब महल एजेन्सीज,**
अशोक राजपथ,
पटना—800 004
दूरभाष : 670599, 660531

मूल्य : 25.00 रुपए

प्रकाशक : किताब महल, 22-ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद
मुद्रक : सेन्चुरी प्रिन्टर्स, 22, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद

'अन्धा युग' कदापि न लिखा जाता, यदि उसका लिखना-न लिखना मेरे वश की बात रह गयी होती ! इस कृति का पूरा जटिल वितान जब मेरे अन्तर में उभरा तो मैं असमंजस में पड़ गया। थोड़ा डर भी लगा। लगा कि इस अभिशप्त भूमि पर एक कदम भी रक्खा कि फिर बच कर नहीं लौटूँगा !

पर एक नशा होता है– अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराइयों में उतरते जाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कणों को बटोर कर, बचा कर, धरातल तक ले जाने का— इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला-मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिए मन बेबस हो उठता है। उसी की उपलब्धि के लिए यह कृति लिखी गयी।

एक स्थल पर आकर मन का डर छूट गया था। कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन— इनसे हिचकिचाना क्या इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं, तो इनमें क्यों न निडर धँसूँ ! इनमें धँस कर भी मैं मर नहीं सकता ! ''हम न मरैं, मरिहै संसारा !''

पर नहीं, संसार भी क्यों मरे ? मैंने जब वेदना सब की भोगी है, तो जो सत्य पाया है, वह अकेले मेरा कैसे हुआ ? एक धरातल ऐसा भी होता है जहाँ 'निजी' और 'व्यापक' का बाह्य अन्तर मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते। 'कहियत भिन्न न भिन्न।'

यह तो 'व्यापक' सत्य है। जिसकी 'निजी' उपलब्धि मैंने की ही— उसकी मर्यादा इसी में है कि वह पुनः व्यापक हो जाये .....

—धर्मवीर भारती

स्व० डॉ० धर्मवीर भारती : संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म : २५ दिसंबर १९२६ प्रयाग के अतरसुइया मुहल्ले में

पिता : स्व० श्री चिरंजीव लाल वर्मा

माता : स्व० श्रीमती चंदा देवी

पत्नी : पुष्पा भारती

संतान : पारमिता मित्तल, किंशुक भारती, प्रज्ञा भारती

बचपन और शिक्षा : शाहजहांपुर के निकट खुदागंज कस्बे के पुराने जमींदार परिवार के पाँच भाइयों में से एक थे, चिरंजीव लाल वर्मा। उन्होंने पुश्तैनी रहन-सहन छोड़कर रुड़की से ओवरसीयरी की शिक्षा प्राप्त की। कुछ दिन बर्मा में सरकारी नौकरी और ठेकेदारी की, फिर उत्तर प्रदेश में लौटकर पहले मिर्ज़ापुर और फिर स्थायी रूप से इलाहाबाद में बस गये।

बालक धर्मवीर बचपन में एक दो वर्ष पिता के साथ आज़मगढ़ और मऊनाथ भंजन में रहे। प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। इलाहाबाद के डी० ए० वी० हाई स्कूल में पहली बार चौथी क्लास में नाम लिखाया गया। आठवीं कक्षा में थे तभी पिता का देहांत हो गया। उसके बाद बहुत दारुण ग़रीबी में दिन बीते। प्रयाग में बसे मामा श्री अभयकृष्ण जौहरी के परिवार के साथ रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। कायस्थ पाठशाला इंटर कालेज से सन् १९४२ में इंटरमीडिएट पास किया। बयालीस के आंदोलन में भाग लिया और पढ़ाई एक बरस रुक गयी। सन् १९४५ में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री प्राप्त की व हिन्दी में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर चिंतामणि घोष मैडल के हकदार बने। सन् १९४७ में वहीं से प्रथम श्रेणी में एम० ए० करने के बाद डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध प्रबंध लिखकर पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

आजीविका : छात्र जीवन से ही ट्यूशनें कर आत्मनिर्भर होना पड़ा। एम० ए० की पढ़ाई का ख़र्च 'अभ्युदय' (सम्पादक : श्री पद्मकांत मालवीय) में पार्ट टाइम काम करके निकाला। १९४८ में 'संगम' (सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी) में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिंदुस्तानी अकादमी में उपसचिव का कार्य किया। तदुपरांत प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९६० तक वहाँ कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। 'निकष' पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' का सम्पादन भी किया। उसके बाद 'धर्मयुग'

में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये। 'धर्मयुग' हिंदी के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक के रूप में स्थापित हुआ। १९८७ में डॉ० भारती ने अवकाश ग्रहण किया। १९८९ में हृदय रोग से गंभीर रूप से बीमार हो गये। गहन चिकित्सा के बाद प्राण तो बच गये किन्तु स्वास्थ्य पूरी तरह कभी सुधरा नहीं और ४ सितंबर १९९७ को देहावसान हो गया। नींद में ही मृत्यु ने वरण कर लिया।

यात्राएँ : सन् १९६१ में कामनवेल्थ रिलेशन्स कमेटी के आमंत्रण पर प्रथम विदेश यात्रा पर इंगलैंड तथा यूरोप भ्रमण। पश्चिम जर्मन सरकार के आमंत्रण पर १९६४ में जर्मनी यात्रा तथा १९६६ में भारतीय दूतावास के निमंत्रण पर इंडोनेशिया तथा थाइलैंड की यात्राएँ कीं। सितंबर १९७१ में मुक्तिवाहिनी के साथ बांगला देश की गुप्त यात्रा की तथा क्रांति का पहला आँखों देखा प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया। भारत-पाक युद्ध १९७१ के दौरान भारतीय स्थल सेना के साथ वास्तविक युद्ध स्थल पर निरंतर उपस्थित रहकर युद्ध के वास्तविक मोर्चे के रोमांचक अनुभवों को लिपिबद्ध किया। इसके पहले ऐसा काम कभी किसी पत्रकार ने नहीं किया। भारतीय मूल की मारिशसीय जनता की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जून १९७४ में मारिशस की यात्रा की। फिर ऐफ्रो एशियाई कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए पुनः मारिशस गये। १९७८ में चीन की सिनुआ संवाद समिति के आमंत्रण पर भारत सरकार के डेलीगेशन के सदस्य के रूप में चीन की यात्रा पर गये। १९९१ में परिवार के साथ अमरीका यात्रा पर गये। और अपने भारत देश के तो हर प्रांत में बार-बार अनेक यात्राएँ कीं। यात्राएँ डॉ० भारती को बहुत सुख देती थीं।

अलंकरण तथा पुरस्कार : १९७२ में पद्म श्री से अलंकृत हुए। १९९७ में महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी ने हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचना को प्रतिवर्ष ५१,००० रु० का पुरस्कार देने की घोषणा की। पुरस्कार का नाम है– "धर्मवीर भारती महाराष्ट्र सारस्वत सम्मान" १९९९ में युवा कहानीकार उदाय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादमी दिल्ली के लिए डॉ० भारती पर वृत्त चित्र का निर्माण हुआ।

अनेक पुरस्कारों में से कुछ इस प्रकार है–

१९९७ – संगीत नाटक अकादमी के मनोनीत सदस्य
१९८४ – हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार (महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन)
१९८५ – साहित्य अकादमी रत्न सदस्यता सम्मान
१९८६ – संस्था सम्मान – उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
१९८८ – सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली
१९८९ – डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शिखर सम्मान, बिहार सरकार

१९८९ – गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१९८९ – भारत भारती पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

१९९० – महाराष्ट्र गौरव – महाराष्ट्र सरकार

१९९१ – साधना सम्मान, केडिया स्मृति न्यास

१९९२ – महाराष्ट्राच्या सुपुत्रांचे अभिनंदन सम्मान, वसंत राव नाईक प्रतिष्ठान

१९९४ – व्यास सम्मान, के० के० बिड़ला फ़ाउंडेशन

१९९६ – शासन सम्मान, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

१९९७ – उत्तर प्रदेश गौरव, अभियान सम्मान संस्थान

प्रकाशन

कहानी संग्रह

मुर्दों का गाँव	...	१९४९
स्वर्ग और पृथ्वी	...	१९४९
चाँद और टूटे हुए लोग	...	१९५५
बंद गली का आख़िरी मकान	...	१९६९
साँस की कलम से (समस्त कहानियाँ एक साथ)	...	२०००

कविता

ठंडा लोहा	...	१९५२
अंधा युग	...	१९५४
सात गीत वर्ष	...	१९५९
कनुप्रिया	...	१९५९
सपना अभी भी	...	१९९३
आद्यन्त	...	१९९९

उपन्यास

गुनाहों का देवता	...	१९४९
सूरज का सातवां घोड़ा	...	१९५२
ग्यारह सपनों का देश (प्रारंभ व समापन)	...	१९६०

निबंध

ठेले पर हिमालय	...	१९५८
पश्यंती	...	१९६९

कहनी अनकहनी ... १९७०

कुछ चेहरे कुछ चिंतन ... १९९५

शब्दिता ... १९९७

रिपोर्टिंग

युद्ध यात्रा ... १९७२

मुक्त क्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे ... १९७३

आलोचना

प्रगतिवाद-एक समीक्षा ... १९४९

मानव मूल्य और साहित्य ... १९६०

एकांकी संग्रह

नदी प्यासी थी ... १९५४

अनुवाद

ऑस्कर वाइल्ड की कहानियाँ ... १९४६

देशांतर (इक्कीस देशों की आधुनिक कविताएँ) ... १९६०

शोध प्रबंध

सिद्ध साहित्य ... १९६८

यात्रा विवरण

यात्रा चक्र ... १९९४

पत्र संकलन

अक्षर अक्षर यज्ञ ... १९९९

साक्षात्कार

धर्मवीर भारती से साक्षात्कार ... १९९९

ग्रंथावली

धर्मवीर भारती ग्रंथावली (९ खंडों में) ... १९९८

अनुक्रम

स्थापना

अन्धा युग

पहला अंक

कौरव नगरी

दूसरा अंक

पशु का उदय

तीसरा अंक

अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य

अन्तराल

पंख, पहिये और पट्टियाँ

चौथा अंक

गांधारी का शाप

पाँचवाँ अंक

विजय : एक क्रमिक आत्महत्या

समापन

प्रभु की मृत्यु

निर्देश

इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथावस्तु 'प्रख्यात' है, केवल कुछ ही तत्त्व 'उत्पाद्य' हैं—कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ। प्राचीन पद्धति भी इसकी अनुमति देती है। दो प्रहरी, जो घटनाओं और स्थितियों पर अपनी व्याख्याएँ देते चलते हैं, बहुत कुछ ग्रीक कोरस के निम्न वर्ग के पात्रों की भाँति हैं; किन्तु, उनका अपना प्रतीकात्मक महत्त्व भी है। कृष्ण के वधकर्त्ता का नाम 'जरा' था, ऐसा भागवत में भी मिलता है, लेखक ने उसे वृद्ध याचक की प्रेत काया मान लिया है।

समस्त कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है। बीच में अन्तराल है। अन्तराल के पहले दर्शकों को लम्बा मध्यान्तर दिया जा सकता है। मंच-विधान जटिल नहीं है। एक पर्दा पीछे स्थायी रहेगा। उसके आगे दो पर्दे रहेंगे। सामने का पर्दा अंक के प्रारम्भ में उठेगा और अंक के अन्त तक उठा रहेगा। उस अवधि में एक ही अंक में दो दृश्य बदलते हैं, उनमें बीच का पर्दा उठता-गिरता रहता है। बीच का और पीछे का पर्दा चित्रित नहीं होना चाहिए। मंच की सजावट कम-से-कम होनी चाहिए। प्रकाश-व्यवस्था में अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए।

दृश्य-परिवर्तन या अंक-परिवर्तन के समय कथा-गायन की योजना है। यह पद्धति लोक-नाट्य-परम्परा से ली गयी है। कथानक की जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जातीं, उनकी सूचना देने, वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने का कहीं-कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिए यह कथा-गायन की पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। कथा-गायक दो रहने चाहिए : एक स्त्री और एक पुरुष। कथा-गायन में जहाँ छन्द बदला है, वहाँ दूसरे गायक को गायन-सूत्र ग्रहण कर लेना चाहिए। वैसे भी आशय के अनुसार, उचित प्रभाव के लिए, पंक्तियों को स्त्री या पुरुष में बाँट देना चाहिए। कथा-गायन के साथ अधिक वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। गायक-स्वर ही प्रमुख रहना चाहिए।

संवाद मुक्त छन्दों में है और अन्तराल में कितने प्रकार की ही छन्द-योजना से मुक्त वृत्तगन्धी गद्य का भी प्रयोग किया गया है। वृत्तगन्धी गद्य की ऐसी पंक्तियाँ अन्यत्र भी मिल जायेंगी। लम्बे नाटक में छन्द बदलते रहना आवश्यक प्रतीत हुआ,

अन्यथा एकरसता आ जाती। कुछ स्थानों को अपवादस्वरूप छोड़ दें तो प्रहरियों का सारा वार्त्तालाप एक निश्चित लय में चलता है जो नाटक के आरम्भ से अन्त तक लगभग एक-सी रहती है। अन्य पात्रों के कथोपकथन में सभी पंक्तियाँ एक ही लय की हों, यह आवश्यक नहीं। जैसे एक बार बोलने के लिए कोई मुँह खोले, किन्तु उसी बात को कहने में, मन में भावनाएँ कई बार करवटें बदल लें, तो उसे सम्प्रेषित करने के लिए लय भी अपने को बदल लेती है। मुक्त छन्द में कोई लिरिक-प्रवृत्ति की कविता अलग से लिखी जाये तो छन्द की मूल योजना वही बनी रह सकती है, किन्तु नाटकीय कथन में इसे मैं बहुत आवश्यक नहीं मानता। कहीं-कहीं लय का यह परिवर्त्तन मैंने जल्दी-जल्दी ही किया है– उदाहरण के लिए पृष्ठ ७६-६० पर संजय के समस्त सम्वाद एक विशिष्ट लय में है, पृष्ठ ८१ पर संजय के सम्वाद की यह लय अकस्मात् बदल जाती है।

जब 'अन्धा युग' प्रस्तुत किया गया तो अभिनेताओं के साथ एक कठिनाई दीख पड़ी। वे सम्वादों को या तो बिलकुल कविता की तरह लय के आघात दे-देकर पढ़ते थे, या बिलकुल गद्य की तरह। स्थिति इन दोनों के बीच की होनी चाहिए। लय की अपेक्षा अर्थ पर बल प्रमुख होना चाहिए, किन्तु छन्द की लय भी ध्वनित होती रहनी चाहिए। अभी इस प्रकार के नाटकों की परम्परा का सूत्रपात ही हो रहा है, किन्तु छन्दात्मक लय, नाटकीय कथन और अर्थ पर आग्रह का जितना सफल समन्वय अश्वत्थामा की भूमिका में श्री गोपालदा ने 'अन्धा युग' के रेडियो-रूपान्तर में प्रस्तुत किया है; और, उसमें वाल्यूम, अंडर-टोन, ओवर-टोन, ओवरलैपिंग टोन्स स्वरों के कम्पन आदि का जैसा उपयोग किया है, वह न केवल इन गीति-नाट्यों, वरन् समस्त नयी कविता के प्रभावोत्पादक पाठ की अमित सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है।

मूलतः यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रख कर लिखा गया था। यहाँ वह उसी मूल रूप में छापा जा रहा है। लिखे जाने के बाद इसका रेडियो-रूपान्तर भी प्रस्तुत हुआ जिसके कारण इसके सम्वादों की लय और भाषा को माँजने में काफी सहायता मिली। मैंने इस बात को भी ध्यान में रक्खा है कि मंच-विधान को थोड़ा बदल कर यह खुले मंच वाले लोक-नाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है। अधिक कल्पनाशील निर्देशक इसके रंगमंच को प्रतीकात्मक भी बना सकते हैं।

पात्र

अश्वत्थामा

गान्धारी	विदुर
धृतराष्ट्र	युधिष्ठिर
कृतवर्मा	कृपाचार्य
संजय	युयुत्सु
वृद्ध याचक	गूँगा भिखारी
प्रहरी १.	प्रहरी २.
व्यास	बलराम

कृष्ण

घटना-काल

महाभारत के अट्ठारहवें दिन की संध्या से
लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण
की मृत्यु के क्षण तक

स्थापना

अन्धा युग

[नेपथ्य से उद्घोषणा तथा मंच पर नर्त्तक के द्वारा उपयुक्त भावनाट्य का प्रदर्शन। शंख-ध्वनि के साथ पर्दा खुलता है तथा मंगलाचरण के साथ-साथ नर्त्तक नमस्कार-मुद्रा प्रदर्शित करता है। उद्घोषणा के साथ-साथ उसकी मुद्राएँ बदलती जाती हैं।]

मंगलाचरण

नारायणम् नमस्कृत्य नरम् चैव नरोत्तमम्।
देवीम् सरस्वतीम् व्यासम् ततो जयमुदीयरेत्।

उद्घोषणा

जिस युग का वर्णन इस कृति में है
उसके विषय में विष्णु-पुराण में कहा है :

'ततश्चानुदिनमल्पाल्प ह्रास
व्यवच्छेददाद्धर्मार्थयोर्जगतस्संक्षयो भविष्यति।'

उस भविष्य में
धर्म-अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे
क्षय होगा धीरे-धीरे सारी धरती का।

'ततश्चार्थ एवाभिजन हेतु।'
सत्ता होगी उनकी।
जिनकी पूँजी होगी।

'कपटवेष धारणमेव महत्त्व हेतु।'
जिनके नकली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्त्व मिलेगा।

'एवम् चाति लुब्धक राजा
सहाश्शैलानामन्तरद्रोणीः प्रजा संश्रियष्यवन्ति।'
राजशक्तियाँ लोलुप होंगी,
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफाओं में छिप-छिप कर दिन काटेगी।
(गहन गुफाएँ वे सचमुच की या अपने कुण्ठित अंतर की)

[गुफाओं में छिपने की मुद्रा का प्रदर्शन करते-करते नर्त्तक नेपथ्य में चला जाता है।]

युद्धोपरान्त,

यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अन्तर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है;
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से

[पटाक्षेप]

पहला अंक

कौरव नगरी

तीन बार तूर्यनाद के उपरान्त

कथा-गायन

टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा
यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है
यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है
अन्धों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन
भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन
अधिकारों का अन्धापन जीत गया
जो कुछ सुन्दर था, शुभ था, कोमलतम था
वह हार गया ... द्वापर युग बीत गया

[पर्दा उठने लगता है]

यह महायुद्ध के अंतिम दिन की संध्या
है छाई चारों ओर उदासी गहरी
कौरव के महलों का सूना गलियारा
हैं घूम रहे केवल दो बूढ़े प्रहरी

[पर्दा उठाने पर स्टेज खाली है। दाईं और बाईं ओर बरछे और ढाल लिये दो प्रहरी हैं जो वार्तालाप करते हुए यन्त्र-परिचालित से स्टेज के आर-पार चलते हैं।]

प्रहरी १. थके हुए हैं हम,
पर घूम-घूम पहरा देते हैं
इस सूने गलियारे में

प्रहरी २. सूने गलियारे में
जिसके इन रत्न-जटित फर्शों पर
कौरव-वधुएँ
मंथर-मंथर गति से
सुरभित पवन-तरंगों-सी चलती थीं
आज वे विधवा हैं,

प्रहरी १. थके हुए हैं हम,
इसलिए नहीं कि
कहीं युद्धों में हमने भी
बाहुबल दिखाया है
प्रहरी थे हम केवल
सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में
भाले हमारे थे,
ढालें हमारी थे,
निरर्थक पड़ी रहीं
अंगों पर बोझ बनी
रक्षक थे हम केवल
लेकिन रक्षणीय कुछ भी नहीं था यहाँ

प्रहरी २. रक्षणीय कुछ भी नहीं था यहाँ .....
संस्कृति थी यह एक बूढ़े और अन्धे की
जिसकी सन्तानों ने
महायुद्ध घोषित किये,
जिसके अन्धेपन में मर्यादा
गलित अंग वेश्या-सी
प्रजाजनों को भी रोगी बनाती फिरी
उस अन्धी संस्कृति,

उस रोगी मर्यादा की
रक्षा हम करते रहे
सत्रह दिन।

प्रहरी १. जिसने अब हमको थका डाला है
मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का,
साहस का,
श्रम का,
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था

प्रहरी २. अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे देकर
अब थके हुए हैं हम
अब चुके हुए हैं हम

[चुप होकर वे आर-पार घूमते हैं। सहसा स्टेज पर प्रकाश धीमा हो जाता है। नेपथ्य से आँधी की-सी ध्वनि आती है। एक प्रहरी कान लगा कर सुनता है, दूसरा भौंहों पर हाथ रख कर आकाश की ओर देखता है।]

प्रहरी १. सुनते हो
कैसी है ध्वनि यह
भयावह ?

प्रहरी २. सहसा अँधियारा क्यों होने लगा
देखो तो
दीख रहा है कुछ ?

प्रहरी १. अन्धे राजा की प्रजा कहाँ तक देखे ?

दीख नहीं पड़ता कुछ
हाँ, शायद बादल है

[दूसरा प्रहरी भी बगल में आकर देखता है और भयभीत हो उठता है]

प्रहरी २. बादल नहीं है
वे गिद्ध हैं
लाखों-करोड़ों
पाँखें खोले

[पंखों की ध्वनि के साथ स्टेज पर और भी अँधेरा]

प्रहरी १. लो
सारी कौरव नगरी
का आसमान
गिद्धों ने घेर लिया

प्रहरी २. झुक जाओ
झुक जाओ
ढालों के नीचे
छिप जाओ
नरभक्षी हैं
वे गिद्ध भूखे हैं।

[प्रकाश तेज होने लगता है]

प्रहरी १. लो ये मुड़ गये
कुरुक्षेत्र की दिशा में

[आँधी की ध्वनि कम होने लगती है]

प्रहरी २. मौत जैसे
ऊपर से निकल गयी

प्रहरी १. अशकुन है
भयानक वह।
पता नहीं क्या होगा

कल तक
इस नगरी में

[विदुर का प्रवेश, बाईं ओर से]

प्रहरी १. कौन है ?

विदुर. मैं हूँ
विदुर
देखा धृतराष्ट्र ने ?
देखा यह भयानक दृश्य ?

प्रहरी १. देखेंगे कैसे वे ?
अन्धे हैं।
कुछ भी क्या देख सके
अब तक
वे ?

विदुर. मिलूँगा उनसे मैं
अशकुन भयानक है
पता नहीं संजय
क्या समाचार लाये आज ?

[प्रहरी जाते हैं, विदुर अपने स्थान पर चिन्तातुर खड़े रहते हैं। पीछे का पर्दा उठने लगता है।]

कथा गायन

है कुरुक्षेत्र से कुछ भी खबर न आयी
जीता या हारा बचा-खुचा कौरव-दल
जाने किसकी लोथों पर जा उतरेगा
यह नरभक्षी गिद्धों का भूखा बादल
अन्तःपुर में मरघट की-सी खामोशी
कृश गान्धारी बैठी है शीश झुकाये
सिंहासन पर धृतराष्ट्र मौन बैठे हैं
संजय अब तक कुछ भी संवाद न लाये।

[पर्दा उठने पर अन्तःपुर। कुशासन बिछाये सादी चौकी पर गान्धारी, एक छोटे सिंहासन पर चिन्तातुर धृतराष्ट्र। विदुर उनकी ओर बढ़ते हैं।]

धृतराष्ट्र. कौन संजय ?

विदुर. नहीं !
विदुर हूँ
महाराज।
विह्वल है सारा नगर आज
बचे-खुचे जो भी दस-बीस लोग
कौरव नगरी में हैं
अपलक नेत्रों से
कर रहे प्रतीक्षा हैं
संजय की।

[कुछ क्षण महाराज के उत्तर की प्रतीक्षा कर]

महाराज
चुप क्यों हैं इतने
आप
माता गान्धारी भी मौन हैं !

धृतराष्ट्र. विदुर !
जीवन में प्रथम बार
आज मुझे आशंका व्यापी है।

विदुर. आशंका ?
आपको जो व्यापी है आज
वह वर्षों पहले हिला गयी थी सबको

धृतराष्ट्र. पहले पर कभी भी तुमने यह नहीं कहा....

विदुर. भीष्म ने कहा था,
गुरु द्रोण ने कहा था,
इसी अन्तःपुर में
आकर कृष्ण ने कहा था—
'मर्यादा मत तोड़ो
तोड़ी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी

गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेट कर
सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी।'

धृतराष्ट्र. समझ नहीं सकते हो
विदुर तुम।
मैं था जन्मान्ध।
कैसे कर सकता था।
ग्रहण मैं
बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को ?

विदुर. जैसे संसार को किया था ग्रहण
अपने
अन्धेपन
के बावजूद

धृतराष्ट्र. पर वह संसार
स्वतः अपने अन्धेपन से उपजा था।
मैंने अपने ही वैयक्तिक सम्वेदन से जो जाना था
केवल उतना ही था मेरे लिए वस्तु-जगत्
इन्द्रजाल की माया-सृष्टि के समान
घने गहरे अँधियारे में
एक काले बिन्दु से
मेरे मन ने सारे भाव किये थे विकसित
मेरी सब वृत्तियाँ उसी से परिचालित थीं !
मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिलकुल मेरा ही वैयक्तिक था।
उसमें नैतिकता का कोई बाह्य मापदंड था ही नहीं।
कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे
वे ही थे अन्तिम सत्य
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी,
मर्यादा थी।

विदुर. पहले ही दिन से किन्तु

आपका वह अन्तिम सत्य
—कौरवों का सैनिक-बल—
होने लगा था सिद्ध झूठा और शक्तिहीन
पिछले सत्रह दिन से
एक-एक कर
पूरे वंश के विनाश का
सम्वाद आप सुनते रहे।

धृतराष्ट्र. मेरे लिए वे सम्वाद सब निरर्थक थे।
मैं हूँ जन्मान्ध
केवल सुन ही तो सकता हूँ
संजय मुझे देते हैं केवल शब्द
उन शब्दों से जो आकार-चित्र बनते हैं
उनसे मैं अब तक अपरिचित हूँ
कल्पित कर सकता नहीं
कैसे दुःशासन की आहत छाती से
रक्त उबल रहा होगा,
कैसे क्रूर भीम ने अँजुली में
धार उसे
ओठ तर किये होंगे।

गान्धारी. [कानों पर हाथ रखकर]
महाराज।
मत दोहरायें वह
सह नहीं पाऊँगी।

[सब क्षण भर चुप]

धृतराष्ट्र. आज मुझे भान हुआ।
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है
आज मुझे भान हुआ।
सहसा यह उगा कोई बाँध टूट गया है

कोटि-कोटि योजन तक दहाड़ता हुआ समुद्र
मेरे वैयक्तिक अनुमानित सीमित जग को
लहरों की विषय-जिह्वाओं से निगलता हुआ
मेरे अन्तर्मन में पैठ गया
सब कुछ बह गया
मेरे अपने वैयक्तिक मूल्य
मेरी निश्चिन्त किन्तु ज्ञानहीन आस्थाएँ।

विदुर. यह जो पीड़ा ने
पराजय ने
दिया है ज्ञान,
दृढ़ता ही देगा वह।

धृतराष्ट्र. किन्तु, इस ज्ञान ने
भय ही दिया है विदुर !
जीवन में प्रथम बार
आज मुझे आशंका व्यापी है।

विदुर. भय है तो
ज्ञान है अधूरा अभी।
प्रभु ने कहा था वह ....
'ज्ञान जो समर्पित नहीं है
अधूरा है
मनोबुद्धि तुम अर्पित कर दो
मुझे।
भय से मुक्त होकर
तुम प्राप्त मुझे ही होगे
इसमें सन्देह नहीं।'

गान्धारी. [आवेश से]
इसमें संदेह है
और किसी को मत हो
मुझको है।

'अर्पित कर दो मुझको मनोबुद्धि'
उसने कहा है यह
जिसने पितामह के वाणों से
आहत हो अपनी सारी ही
मनोबुद्धि खो दी थी ?
उसने कहा है यह,
जिसने मर्यादा को तोड़ा है बार-बार ?

धृतराष्ट्र. शान्त रहो
शान्त रहो,
गान्धारी शान्त रहो।
दोष किसी को मत दो।
अन्धा था मैं .....

गान्धारी. लेकिन अन्धी नहीं थी मैं।
मैंने यह बाहर का वस्तु-जगत् अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब हैं केवल आडम्बर मात्र,
मैंने यह बार-बार देखा था।
निर्णय के क्षण में विवेक और मर्यादा
व्यर्थ सिद्ध होते आये हैं सदा
हम सब के मन में कहीं एक अन्ध गह्वर है।
बर्बर पशु अन्धा पशु वास वहीं करता है,
स्वामी जो हमारे विवेक का,
नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण
यह सब हैं अन्धी प्रवृत्तियों की पोशाकें
जिनमें कटे कपड़ों की आँखें सिली रहती हैं
मुझको इस झूठे आडम्बर से नफरत थी
इसलिए स्वेच्छा से मैंने इन आँखों पर पट्टी चढ़ा रक्खी थी।

विदुर. कटु हो गयी हो तुम
गान्धारी !
पुत्रशोक ने तुमको अन्दर से

जर्जर कर डाला है !
तुम्हीं ने कहा था
दुर्योधन से .....

गान्धारी. मैंने कहा था दुर्योधन से
धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख !
उधर जय होगी !
धर्म किसी ओर नहीं था। लेकिन !
सब ही थे अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित
जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया।
वंचक है।

धृतराष्ट्र. शान्त रहो गान्धारी।

विदुर. यह कटु निराशा की
उद्धत अनास्था है।
क्षमा करो प्रभु !
यह कटु अनास्था भी अपने
चरणों में स्वीकार करो !
आस्था तुम लेते हो
लेगा अनास्था कौन ?
क्षमा करो प्रभु !
पुत्र-शोक से जर्जर माता हैं गान्धारी।

गान्धारी. माता मत कहो मुझे
तुम जिसको कहते हो प्रभु
वह भी मुझे माता ही कहता है।
शब्द यह जलते हुए लोहे की सलाखों-सा
मेरी पसलियों में धँसता है।
सत्रह दिन के अन्दर
मेरे सब पुत्र एक-एक कर मारे गये

अपने इन हाथों से
मैंने उन फूलों-सी वधुओं की कलाइयों से
चूड़ियाँ उतारी हैं
अपने इस आँचल से
सेंदुर की रेखाएँ पोंछी हैं।
[नेपथ्य से] जय हो
दुर्योधन की जय हो।
गान्धारी की जय हो।
मंगल हो,
नरपति धृतराष्ट्र का मंगल हो।

धृतराष्ट्र. देखो।
विदुर देखो ! संजय आये।

गान्धारी. जीत गया
मेरा पुत्र दुर्योधन
मैंने कहा था
वह जीतेगा निश्चय आज।
[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी. याचक है महाराज !
[याचक का प्रवेश]
एक वृद्ध याचक है।

विदुर. याचक है ?
उन्नत ललाट
श्वेतकेशी
आजानुबाहु ?

याचक. मैं वह भविष्य हूँ
जो झूठा सिद्ध हुआ आज
कौरव की नगरी में
मैंने मापा था, नक्षत्रों की गति को

उतारा था अंकों में।
मानव-नियति के
अलिखित अक्षर जाँचे थे।
मैं था ज्योतिषी दूर देश का।

धृतराष्ट्र. याद मुझे आता है
तुमने कहा था कि द्वन्द्व अनिवार्य है
क्योंकि उससे ही जय होगी कौरव-दल की।

याचक. मैं हूँ वही
आज मेरा विज्ञान सब मिथ्या ही सिद्ध हुआ।
सहसा एक व्यक्ति
ऐसा आया जो सारे
नक्षत्रों की गति से भी ज्यादा शक्तिशाली था।
उसने रणभूमि में
विषादग्रस्त अर्जुन से कहा—
'मैं हूँ परात्पर।
जो कहता हूँ करो
सत्य जीतेगा
मुझसे लो सत्य, मत डरो।'

विदुर. प्रभु थे वे !

गान्धारी. कभी नहीं !

विदुर. उनकी गति में ही
समाहित है सारे इतिहासों की,
सारे नक्षत्रों की दैवी गति।

याचक. पता नहीं प्रभु हैं या नहीं
किन्तु, उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।

नियति नहीं है पूर्वनिर्धारित—
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता-मिटाता है।

गान्धारी. प्रहरी, इसको एक अंजुल मुद्राएँ दो।
तुमने कहा है—
'जय होगी दुर्योधन की।'

याचक. मैं तो हूँ झूठा भविष्य मात्र
मेरे शब्दों का इस वर्तमान में
कोई मूल्य नहीं,
मेरे जैसे
जाने कितने झूठे भविष्य
ध्वस्त स्वप्न
गलित तत्त्व
बिखरे हैं कौरव की नगरी में
गली-गली।
माता हैं गान्धारी
ममता में पाल रही हैं सब को।

[प्रहरी मुद्राएँ लाकर देता है]

जय हो दुर्योधन की
जय हो गान्धारी की

[जाता है]

गान्धारी. होगी,
अवश्य होगी जय।
मेरी यह आशा
यदि अन्धी है तो हो
पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा।

[दूसरा प्रहरी आकर दीप जलाता है]

विदुर. डूब गया दिन .....

धृतराष्ट्र. पर
संजय नहीं आये

लौट गये होंगे
सब योद्धा अब शिविर में
जीता कौन ?
हारा कौन ?

विदुर. महाराज !
संशय मत करें।
संजय जो समाचार लायेंगे शुभ होगा
माता अब जाकर विश्राम करें !
नगर-द्वार अपलक खुले ही हैं
संजय के रथ की प्रतीक्षा में

[एक ओर विदुर और दूसरी ओर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी जाते हैं; प्रहरी पुनः स्टेज के आरधार घूमने लगते हैं]

प्रहरी १. मर्यादा !
प्रहरी २. अनास्था !
प्रहरी १. पुत्रशोक !
प्रहरी २. भविष्यत् !
प्रहरी १. ये सब
राजाओं के जीवन की शोभा हैं
प्रहरी २. वे जिनको ये सब प्रभु कहते हैं।
इस सब को अपने ही जिम्मे ले लेते हैं।
प्रहरी १. पर यह जो हम दोनों का जीवन
सूने गलियारे में बीत गया
प्रहरी २. कौन इसे
अपने जिम्मे लेगा ?
प्रहरी १. हमने मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया,
क्योंकि नहीं थी अपनी कोई भी मर्यादा।
प्रहरी २. हमको अनास्था ने कभी नहीं झकझोरा,
क्योंकि नहीं थी अपनी कोई भी गहन आस्था।

प्रहरी १. हमने नहीं झेला शोक
प्रहरी २. जाना नहीं कोई दर्द
प्रहरी १. सूने गलियारे-सा सूना यह जीवन भी बीत गया।
प्रहरी २. क्योंकि हम दास थे
प्रहरी १. केवल वहन करते थे आज्ञाएँ हम अन्धे राजा की
प्रहरी २. नहीं था हमारा कोई अपना खुद का मत,
कोई अपना निर्णय
प्रहरी १. इसलिए सूने गलियारे में
निरुद्देश्य,
निरुद्देश्य,
चलते हम रहे सदा
दाएँ से बाएँ,
और बाएँ से दाएँ
प्रहरी २. मरने के बाद भी
यम के गलियारे में
चलते रहेंगे सदा
दाएँ से बाएँ
और बाएँ से दाएँ!

[चलते-चलते विंग में चले जाते हैं। स्टेज पर अँधेरा]

धीरे-धीरे पटाक्षेप के साथ

कथा गायन

आसन्न पराजय वाली इस नगरी में
सब नष्ट हुई पद्धतियाँ धीमे-धीमे
यह शाम पराजय की, भय की, संशय की
भर गये तिमिर से ये सूने गलियारे
जिनमें बूढ़ा झूठा भविष्य याचक-सा
है भटक रहा टुकड़े को हाथ पसारे
अन्दर केवल दो बुझती लपटें बाकी
राजा के अन्धे दर्शन की बारीकी

या अन्धी आशा माता गान्धारी की
वह संजय जिसको वह वरदान मिला है
वह अमर रहेगा और तटस्थ रहेगा
जो दिव्य दृष्टि से सब देखेगा समझेगा
जो अन्धे राजा से सब सत्य कहेगा।
जो मुक्त रहेगा ब्रह्मास्त्रों के भय से
जो मुक्त रहेगा उलझन से, संशय से
वह संजय भी
इस मोह-निशा से घिर कर
है भटक रहा
जाने किस
कंटक-पथ पर।

दूसरा अंक

पशु का उदय

कथा-गायन

संजय तटस्थद्रष्टा शब्दों का शिल्पी है
पर वह भी भटक गया असमंजस के वन में
दायित्व गहन, भाषा अपूर्ण, श्रोता अन्धे
पर सत्य वही देगा उनको संकट-क्षण में
वह संजय भी
इस मोह-निशा से घिर कर
है भटक रहा
जाने किस कंटक-पथ पर

[पर्दा उठने पर वनपथ का दृश्य। कोई योद्धा बगल में अस्त्र रख कर वस्त्र से मुख ढाँप सोया है। संजय का प्रवेश]

संजय. भटक गया हूँ
मैं जाने किस कंटक-वन में
पता नहीं कितनी दूर हस्तिनापुर है,
कैसे पहुँचूँगा मैं ?
जाकर कहूँगा क्या
इस लज्जाजनक पराजय के बाद भी
क्यों जीवित बचा हूँ मैं ?
कैसे कहूँ मैं
कमी नहीं शब्दों की आज भी
मैंने ही उनको बताया है
युद्ध में घटा जो-जो,
लेकिन आज अन्तिम पराजय के अनुभव ने
जैसे प्रकृति ही बदल दी है सत्य की

आज कैसे वही शब्द
वाहक बनेंगे इस नूतन अनुभूति के ?
[सहसा जाग कर वह योद्धा पुकारता है– 'संजय']
किसने पुकारा मुझे ?
प्रेतों की ध्वनि है यह
या मेरा भ्रम ही है ?

कृतवर्मा. डरो मत
मैं हूँ कृतवर्मा !
जीवित हो संजय तुम ?
पांडव योद्धाओं ने छोड़ दिया
जीवित तुम्हें ?

संजय. जीवित हूँ !
आज जब कोसों तक फैली हुई धरती को
पाट दिया अर्जुन ने
भूलुंठित कौरव-कबन्धों से,
शेष नहीं रहा एक भी
जीवित कौरव-वीर
सात्यकि ने मेरे भी वध को उठाया अस्त्र;
अच्छा था
मैं भी
यदि आज नहीं बचता शेष,
किन्तु कहा व्यास ने 'मरेगा नहीं
संजय अवध्य है'
कैसा यह शाप मुझे व्यास ने दिया है
अनजाने में
हर संकट, युद्ध, महानाश, प्रलय, विप्लव के बावजूद
शेष बचोगे तुम संजय
सत्य कहने को
अन्धों से
किन्तु कैसे कहूँगा हाय

सात्यकि के उठे हुए अस्त्र के
चमकदार ठंडे लोहे के स्पर्श में
मृत्यु को इतने निकट पाना
मेरे लिए यह
बिल्कुल ही नया अनुभव था !
जैसे तेज वाण किसी
कोमल मृणाल को
ऊपर से नीचे तक चीर जाये
चरम त्रास के उस बेहद गहरे क्षण में
कोई मेरी सारी अनुभूतियों को चीर गया
कैसे दे पाऊँगा मैं सम्पूर्ण सत्य
उन्हें विकृत अनुभूति से ?

कृतवर्मा. धैर्य धरो संजय !
क्योंकि तुमको ही जाकर बतानी है
दोनों को पराजय दुर्योधन की !

संजय. कैसे बताऊँगा !
वह जो सम्राटों का अधिपति था
खाली हाथ
नंगे पाँव
रक्त-सने
फटे हुए वस्त्रों में
टूटे रथ के समीप
खड़ा था निहत्था हो;
अश्रु-भरे नेत्रों से
उसने मुझे देखा
और माथा झुका लिया
कैसे कहूँगा
मैं जाकर उन दोनों से
कैसे कहूँगा ?

[जाता है]

कृतवर्मा. चला गया संजय भी
बहुत दिनों पहले
विदुर ने कहा था
यह होकर रहेगा,
वह होकर रहा आज

[नेपथ्य में कोई पुकारता है, ''अश्वत्थाऽऽमाऽऽ।'' कृतवर्मा ध्यान से सुनता है]

यह तो आवाज है
बूढ़े कृपाचार्य की।

[नेपथ्य में पुनः पुकार 'अश्वत्थाऽऽमाऽऽ।' कृतवर्मा पुकारता है– 'कृपाऽऽचार्य ..... कृपाचार्य', ... कृपाचार्य, का प्रवेश]

यह तो कृतवर्मा है।
तुम भी जीवित हो कृतवर्मा ?

कृतवर्मा. जीवित हूँ
क्या अश्वत्थामा भी जीवित है ?

कृपाचार्य. जीवित है
केवल हम तीन
आज !
रथ से उतर कर
जब राजा दुर्योधन ने
नतमस्तक होकर
पराजय स्वीकार की
अश्वत्थामा ने
यह देखा
और उसी समय
उसने मरोड़ दिया
अपना धनुष
आर्तनाद करता हुआ
वन की ओर चला गया
अश्वत्थाऽऽमाऽऽ .....

[पुकारते हुए जाते हैं, दूर से उनकी पुकार सुन पड़ती है। पीछे का पर्दा खुल कर अन्दर का दृश्य। अँधेरा– केवल एक प्रकाश-वृत्त अश्वत्थामा पर, जो टूटा धनुष हाथ में लिये बैठा है।]

अश्वत्थामा : यह मेरा धनुष है
धनुष अश्वत्थामा का
जिसकी प्रत्यंचा खुद द्रोण ने चढ़ाई थी
आज जब मैंने
दुर्योधन को देखा
निःशस्त्र, दीन
आँखों में आँसू भरे
मैंने मरोड़ दिया
अपने इस धनुष को।
कुचले हुए साँप-सा
भयावह किन्तु
शक्तिहीन मेरा धनुष है यह
जैसा है मेरा मन
किसके बल पर लूँगा
मैं अब
प्रतिशोध
पिता की निर्मम हत्या का
वन में
भयानक इस वन में भी
भूल नहीं पाता हूँ मैं
कैसे सुनकर
युधिष्ठिर की घोषणा
कि 'अश्वत्थामा मारा गया'
शस्त्र रख दिये थे
गुरु द्रोण ने रणभूमि में
उनको थी अटल आस्था
युधिष्ठिर की वाणी में

पाकर निहत्था उन्हें
पापी धृष्टद्युम्न ने
अस्त्रों से खंड-खंड कर डाला
भूल नहीं पाता हूँ
मेरे पिता थे अपराजेय
अर्द्धसत्य से ही
युधिष्ठिर ने उनका
वध कर डाला।
उस दिन से
मेरे अन्दर भी
जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण-हत्या
युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी
धर्मराज होकर वे बोले
'नर या कुंजर'
मानव को पशु से
उन्होंने पृथक् नहीं किया
उस दिन से मैं हूँ
पशुमात्र, अन्ध बर्बर पशु
किन्तु आज मैं भी एक अन्धी गुफा में हूँ भटक गया
गुफा यह पराजय की !
दुर्योधन सुनो !
सुनो, द्रोण सुनो !
मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है

गन्दा कफ
बासी थूक
शेष हूँ अभी तक मैं
[वक्ष पीटता है]
आत्मघात कर लूँ ?
इस नपुंसक अस्तित्व से
छुटकारा पाकर
यदि मुझे
पिछली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद
इतनी यातना नहीं होगी !
[नेपथ्य में पुकार अश्वथाऽऽमाऽऽ ...]
किन्तु नहीं !
जीवित रहूँगा मैं
अन्धे बर्बर पशु-सा
वाणी हो सत्य धर्मराज की।
मेरी इस पसली के नीचे
दो पंजे उग आयें
मेरी ये पुतलियाँ
बिन दाँतों के चीथ खायें
पायें जिसे !
वध, केवल वध, केवल वध
अंतिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का।
[किसी के आने की आहट]
आता है कोई
शायद पांडव-योद्धा है
आहा !
अकेला, निहत्था है।
पीछे से छिपकर

इस पर करूँगा वार
इन भूखे हाथों से
धनुष मरोड़ा है
गर्दन मरोड़ूँगा
छिप जाऊँ, इस झाड़ी के पीछे।

[छिपता है ! संजय का प्रवेश]

संजय. फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष
फिर भी रहूँगा शेष
सत्य कितना कटु हो
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूँगा मैं
केवल सत्य, केवल सत्य, केवल सत्य
है अन्तिम अर्थ
मेरे ..... आह !

[अश्वत्थामा आक्रमण करता है। गला दबोच लेता है]

अश्वत्थामा. इसी तरह
इसी तरह
मेरे भूखे पंजे जाकर दबोचेंगे
वह गला युधिष्ठिर का
जिससे निकला था
'अश्वत्थामा हतो हतः'

[कृतवर्मा और कृपाचार्य प्रवेश करते हैं]

कृतवर्मा. [चीखकर]
छोड़ो अश्वत्थामा !
संजय है वह
कोई पांडव नहीं है।

अश्वत्थामा. केवल, केवल वध, केवल .....

कृपाचार्य. कृतवर्मा, पीछे से पकड़ो

कस लो अश्वत्थामा को।
वध– लेकिन शत्रु का–
कैसे योद्धा हो अश्वत्थामा ?
संजय अबध्य है
तटस्थ है।

अश्वत्थामा. [कृतवर्मा के बन्धन में छटपटाता हुआ]
तटस्थ ?
मातुल मैं योद्धा नहीं हूँ
बर्बर पशु हूँ
यह तटस्थ शब्द
है मेरे लिए अर्थहीन।
सुन लो यह घोषणा
इस अन्धे बर्बर पशु की
पक्ष में नहीं है जो मेरे
वह शत्रु है।

कृतवर्मा. पागल हो तुम
संजय, जाओ अपने पथ पर

संजय. मत छोड़ो
विनती करता हूँ
मत छोड़ो मुझे
कर दो वध
जाकर अन्धों से
सत्य कहने की
मर्मान्तिक पीड़ा है जो
उससे जो वध ज्यादा सुखमय है
वध करके
मुक्त मुझे कर दो
अश्वत्थामा !

[अश्वत्थामा विवश दृष्टि से कृपाचार्य की ओर देखता है, उनके कन्धों से शीश टिका देता है]